शोध पत्र- हिन्दी

September, 2010

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जनधर्मिता

* ओम प्रकाश सिंह

* शोध छात्र हिन्दी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

1857 की प्रथम स्वाधीनता संग्राम के पश्चात् हिन्दी–साहित्य के जनधर्मी–धारा को समयानुकूल वेग प्रदान करने वाले जन–जीवन से जुड़े कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। वे हिन्दी साहित्य में आधुनिक मूल्यों को जन–सामान्य की जिन्दगी से जोड़ने वाले प्रमुख कवियों में से एक थे। उन्होंने अपने साहित्य में जन–सामान्य के जीवन को ही मुख्य रूप से आधार बनाया है और इसी आधार के प्रति इनका अटूट प्रेम इन्हें भारत के इन्दु (चाँद) के रूप में प्रसिद्धि दिलाता है।

"हिन्दी साहित्यकारों और हिन्दी–प्रेमियों का जैसा प्रेम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पाया, वैसा प्रेम हिन्दी के दूसरे साहित्यकारों को नहीं मिला। अन्य भाषाओं में उनसे बड़े कलाकार पैदा हुए हैं, किन्तु पूर्ण चन्द्र की तरह जन–समुद्र में प्रेम का ज्वार उठाने वाला व्यक्तित्व उन्हीं का था। इसके दो कारण थे, एक तो यह कि उन्होंने देश और समाज की महान् ऐतिहासिक आवश्यकता पहचानी और उसे पूरा किया। दूसरा यह है कि उन्होंने जो कुछ किया, वह निःस्वार्थभाव से देश और जनता के लिए, हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए, अपने अहंकार की तुष्टि के लिए नहीं, अपना वन्दन–अभिनन्दन कराने के लिए नहीं।"[1]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने युग के साहित्यिक नेता थे। 1857 की क्रान्ति के बाद जब कि चारों ओर श्मशानी शान्ति विराजमान थी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही एक ऐसे प्रकाश स्तम्भ थे, जिन्होंने हिन्दी संसार में घूम–घूम कर जान फूँकी और उन्हें उठा कर खड़ा किया। उन्होंने धर्म को, समाज को और देश को पराधीनता से मुक्त कराने के जितने प्रयास किए, उनके लिए वे सदा याद किए जाएँगे। उनके इस प्रयास का एक जायजा लीजिए, जब वे अंग्रेजी राज की पराधीनता की शृंखला में जकड़ी हुई युवा पीढी को धिक्कारते और ललकारते हुए लिखते हैं–

ßf/kd og ekrk&firk] ftu relk dk;j i= tU;k jhA@f/kd og ?kjh tue Hk;k] tke ;g dyd çdV;k jhA@tuer gh D;k u ejk jhA@ mBk&mBk lc deju ck/kk] 'kL=u lku /kjk jhA@fot ; fulku ctkb ckoj vkxb iko /kjk jhAÞ[2]

हिन्दी साहित्याकाश में भारतेन्दु का अभ्युदय सही अर्थों में एक ऐतिहासिक घटना है। उनके आगमन से हिन्दी साहित्य की जनधर्मी धारा को बल मिला, नयी दिशा और दृष्टि मिली। जो देश गुलामी की जंजीर से जकड़ा हो, जहाँ संघर्ष का धूमिल वातावरण व्याप्त हो, वहाँ साहित्यकार ज्यादा समय तक जन–सामान्य की समस्याओं से विमुख नहीं रह सकता। हर युग अपनी नयी परिस्थिति के अनुकूल मोड़ लेता है और नयी शक्तियों तथा प्रतिभाओं को क्रान्तिकारी परिवर्तन हेतु आमंत्रित करता है। भारतेन्दु इसी अनिवार्यता की पूर्ति हेतु अवतरित हुए थे। वे जनजागरण से परिपूर्ण एक नये युग के निर्माता थे।

उनके जीवन–व्यक्तित्व तथा संघर्षधर्मी वैचारिकता को चित्रित करते हुए बच्चन सिंह लिखते हैं, "भारतेन्दु के व्यक्तित्व में फक्कड़पन और मस्ती भरी हुई थी। ......वे 'जो घर जारै आपना चलै हमारे साथ' के अनुयायी थे।"[3]

भारतेन्दु ने देश का वास्तविक परिचय पाने के लिए दूर–दूर की यात्रा की। गरीबी और अतिशय आर्थिक विपन्नता में पग्–पग् पर टूटते आदमियों को देखकर इनका भावुक हृदय पिघलता रहा। ये सोचते थे कि यदि मेरे पास साधन होता तो मैं पूरे देश की गरीबी को एक क्षण में दूर कर देता। मगर चारों तरफ से गलियाँ बन्द थीं। जन–जीवन के अनगिनत संघर्षशील अनुभवों ने इनके गहरे और व्यापक विचारों को सुलझा हुआ रास्ता दिखाया। इन्हीं पगडण्डियों से गुजरते हुए इन्होंने समाज, साहित्य और राष्ट्र को समृद्धि से भरपूर वैचारिक आलोक प्रदान किया।

साहित्य का कोई अंग ऐसा नहीं है जिस पर भारतेन्दु ने लेखनी न चलाई हो। इनमें जहाँ एक ओर वर्णन का वैविध्य है, वहीं अभिव्यक्ति की मौलिकता भी है। इतिहास दर्शन से लेकर चिंतन के नवीन सूक्ष्म बिन्दुओं तक का विवेचन भारतेन्दु की विशेषता रही है। इनके सम्पूर्ण रचना संसार को चार नीवों पर आधारित बताते हुए बाबू गुलाबराय लिखते हैं, "भारतेन्दु बाबू ने अपने काव्य द्वारा चार बातों की नींव डाली, जिनका प्रभाव आधुनिक काव्य पर भी दिखाई पड़ता है। ये बातें इस प्रकार हैं : (1) साहित्यिक भाषा का जनता की भाषा के साथ सम्पर्क, (2) प्रेम में वेदना की झलक, (3) देशभक्ति और समाज सुधार, (4) धार्मिक सहिष्णुता।"[4] भारतेन्दु के मन में अपने देश और समाज के प्रति असीम अनुराग था। इनकी ज्यादातर कविताएँ मिट्टी की गंध से प्रभावित कही जा सकती हैं। 'भारत दुर्दशा' में कवि ने देश की सही हालत का चित्रण करते हुए दैन्यग्रस्त परिस्थितियों के प्रति सहानुभूति और संवेदना भी प्रकट की है। विदेशी शासन व्यवस्था का कुचक्र किस तरह समाज को बेजान और कमजोर बना देता है और कैसे हड्डियों में घुन फैलाकर शताब्दियों के लिए सम्पूर्ण

समाज को निष्प्राण कर देता है– इसका भारतेन्दु ने मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक दोनों स्तर पर विवेचन किया है। विदेशी शासन में न केवल विचार–प्रकाशन पर प्रतिबन्ध होता है वरन् आत्मोत्थान के हर चौराहे पर बंधन, मजबूरी और कानून के तीखे काँटे भी बिछे होते हैं। स्वतन्त्र अभिव्यक्ति का कोई सवाल ही नहीं उठता। गुलाम देश की पतनोन्मुखी दशाओं से भारतेन्दु भलीभांति परिचित थे। इसलिए वे आँखों में पानी भर कर असाधारण पीड़ा, व्यथा को सहज ग्राह्य धरातल पर मुखरित करते हैं–

ßjkmg lc feydS vkog Hkkjr HkkbZ]
gk! gk! Hkkjr nqnZ'kk u ns[kh tkbZAþ[5]

भारतेन्दु समाज की जर्जर दशा से अत्यधिक क्षुब्ध थे। विदेशी शासन की कठोरता ने देश की कमर तोड़ दी थी। लोग समस्याओं से उबरने की जगह उन्हीं से और बँधते जा रहे थे। रूढ़ियों और परम्पराओं के खोखलेपन से लोग पस्त होते जा रहे थे। यहाँ शोषण और बेईमानी की हर परत को उघाड़ कर भारतेन्दु जी ने वर्तमान व्यवस्था पर गहरा प्रहार किया है। विधवा–विवाह, छुआछूत, जाति–पाँति और अन्य सामाजिक मसलों पर भी कवि ने अपना तर्क पेश किया है। वर्तमान शोषण और रिश्वत का व्यंग्यपूर्ण चित्र 'अंधेर नगरी' में भारतेन्दु जी ने बखूबी उकेरा है, देखें–

ßpuk gkfde lc tks [kkrs] lc ij nqwuk fVdl yxkrsA
pqju tc ls fgUnw es vk;k] blds /ku cy lHkh ?kVk;kA
pqju vey s lc tks [kkos] nwuh fjlor rqjr ipkosA
pqju lkgsc ykx tks [kkrk] lkjk fgUn gte dj tkrkA
pqju iqfyl okys [kkrs] lc dkuwu gte dj tkrsAþ[6]

भक्त कवियों की परम्परा में भारतेन्दु का स्थान और महत्व विशेष रूप से विचारणीय है। धर्म के दायरे में भी इनकी सोच साफ–सुथरी थी। भारतेन्दु का मन सबसे ज्यादा कृष्ण और राधा के रूप–वर्णन में रमा है। विरहिणी ब्रज बालाओं की तरह ये कृष्ण का दर्शन पाने के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर देते हैं, किन्तु ब्रजनन्दन के इस स्मरण से तात्पर्य यह नहीं है कि वे जनपक्षीय मूल्यों को भुला बैठे, उन्होंने उस स्मरण में भी अपनी जनधर्मी चेतना को ही प्रेषित किया है, देखें–

ßdgkWa d#.kkfuf/k dslo lks;A@tkxr udu tnfi cgqr fof/k Hkkjrokl h jks;A@ dgkW x;s lc 'kkL= dgh ftu Hkkjh efgek xk;hA@Hkkxr cNy d#.kkfuf/k rqe dg xk;k cgqr cuk;hA@gk; lqur ufga fuBqj Hk;s D;ks ijen;ky dgk;hA@ lc fof/k cwMr yf[k fut nsl fgyg u vcgq cpk;hAþ[7]

भारतेन्दु जन–भाषा (हिन्दी) के कट्टर समर्थक और परिपोषक थे। उनका पूरा जीवन इसी पुनीत उद्देश्य की पूर्ति में बीता है। भारतेन्दु बाबू की साधना का ही परिणाम है कि भारत के वृहत् जनता द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी भाषा आज राष्ट्रभाषा के पद को सुशोभित कर रही है। डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है, "भारतेन्दु युग की यही सबसे बड़ी खूबी है, वह जनता का साहित्य है। उनकी भाषा न दरबारों की है, न सरकारी अफसरों और कचहरी के मुहर्रिरों की। वह जनता की भाषा है, जिसमें अत्यधिक ग्राम–सम्पर्क के चिह्न भले हों, नागरिक बनाव सिंगार और टीपटाप का अभाव है।"[8] भारतेन्दु जैसे अनमोल पारखी ने इसे परखा और इसके माथे पर चाँद का तिलक लगा दिया, जिसके फलस्वरूप देश के आजाद होते ही यह अपने यथोचित, सम्मानपूर्ण स्थान पर पहुँच गयी। उन्होंने जनभाषा को उचित सम्मान दिलाने के साथ उसमें संकुचित परहेज का गंध नहीं आने दिया। इस सम्बन्ध में डॉ० किशोरीलाल गुप्त लिखते हैं, "उन्होंने अरबी फारसी के उन शब्दों को ग्रहण करने में कोई संकोच नहीं किया, जो जन–साधारण की बोलचाल में प्रयुक्त थे, जनता की जबान पर चढ़े हुए थे।"[9] भारतेन्दु जी ने निज भाषा की उन्नति को ही सब उन्नति का मूल माना है। वे लिखते हैं, ßfut Hkk"kk mUufr vgS] lc mUufr dks eqyA@fcu fut Hkk"kk Kku ds] feVr u fg; dks lqyAAþ[10]

अन्त में भारतेन्दु के शब्दों में ही उनके जनपक्षीय स्वभाव–चित्र की एक झलक देखें–

ß lsod xquh tu ds] pkdj prqj ds gSa]@dfou ds xhr] fpr fgr xqu&xkuh ds@ lh/ku lks lh/k] egk ckds ge ckdu ls]@^gjhpUn* uxn nekn vfHkekuh ds@ pkfgcs dks pkg] dkgq dh u ijokg]@ugh ug ds] fnoku s lnk lqjr fuokuh ds@ lcsl jfld ds] lqnk l&nkl çfeu ds]@l[kk l;kjs Ñ".k ds] xqyke jk/kkjkuh dsAþ[11]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतेन्दु एक सशक्त जनवादी साहित्यकार हैं। उनमें वे सभी जनपक्षी गुण विद्यमान हैं, जो एक जनधर्मी साहित्यकार में होनी चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ

1.डॉ० रामविलास शर्मा, 'परम्परा का मूल्यांकन', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981, पृ० 102 । 2. डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, 'आधुनिक हिन्दी कविता, सिद्धान्त और समीक्षा' में उद्धृत, प्रथम संस्करण, 1962, पृ० 52 । 3. बच्चन सिंह, 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', प्रथम संस्करण, 1996, पृ० 294 । 4. बाबू गुलाबराय, 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास', बावनवाँ संस्करण, 2008, सं० प्रो० विश्वम्भर 'अरुण', पृ० 195–196 । 5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, 'भारतेन्दु–ग्रंथावली', प्रथम खण्ड, पृ० 468 । 6. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, 'अंधेर नगरी', 'भारतेन्दु ग्रंथावली' (प्रथम खण्ड), पृ० 661–662 । 7. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, 'नीलदेवी', 'भारतेन्दु ग्रंथावली' (प्रथम खण्ड), पृ० 536–537 । 8. डॉ० रामविलास शर्मा, 'भारतेन्दु युग', चतुर्थ संस्करण, 1963, पृ० 8 । 9. डॉ० किशोरीलाल गुप्त, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'हिन्दी निबन्ध' में संग्रहीत, सं० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, वि०वि० प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1973, पृ० 394। 10. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में उद्धृत, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, अठारहवाँ संस्करण, 1978, पृ० 329 । 11. डॉ० किशोरीलाल गुप्त, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'हिन्दी निबन्ध' में संगृहीत, सं० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, वि०वि० प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1973, पृ० 392।